2803

तित्थयर

वर्ष २० : अंक ४ अगस्त १९९६

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष २० : अंक ४
अगस्त १९९६

□

संपादन
राजकुमारी बेगानी
लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये
वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये
प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक
अनुप्रिया प्रिन्टर्स
६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन
कलकत्ता-७

सूची

साधन स्रोत	१०१
प्रवचन	१०८
चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास	११९
महाराजा श्रेणिक	१२६
संकलन	१२९
जैन पत्र पत्रिकाएँ कहाँ/क्या	१३०

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

NAHAR

Interior Decorator

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road

CALCUTTA-700 020

Phone : 247-6874 Resi. : 244-3810

मध्यकालीन राजस्थानी जैन इतिहास के
॥ साधन-स्रोत ॥

डा० श्रीमती राजेश जैन

मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म का बहुआयामी वैभव सम्पन्न इतिहास राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत की एक अमूल्य धरोहर है। शूरवीर एवं पराक्रमी राजपूत राजाओं की उदार धार्मिक नीतियों ने, न केवल जैन धर्म के चार प्रमुख स्तम्भ श्रावक, श्राविकाओं, साधु एवं साध्वियों को प्रश्रय एवं संरक्षण दिया, अपितु जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जैन धर्म के सांस्कृतिक वैभव को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाने का श्रेय ८वीं से १२वीं शताब्दी तक के विभिन्न राजपूत शासकों को है, तो ११वीं से १७वीं शताब्दी तक के मुस्लिम आक्रमणों से जैन धर्म के विविध प्रतिमानों यथा—जैन तीर्थस्थल, साहित्य, कला, मूर्तियों, स्थापत्य आदि को संरक्षण देने एवं सुरक्षित बचाये रखने का श्रेय भी विभिन्न राजपूत राजाओं को ही है। मुस्लिम विध्वंस के उपरान्त मन्दिरों का पुनरुद्धार करने, उनके रख-रखाव आदि के लिये न केवल राजाओं ने स्तुत्य प्रयास किये, अपितु जन-सामान्य ने भी अपरिमित सहयोग दिया। भ्रमणशील जैन मुनियों के नैतिक उत्थान के प्रयासों और धर्म में निहित आदर्शवाद, त्याग, सादा जीवन एवं ज्ञानमयी परम्परा के कारण, लोक कल्याण-कारी कार्य बहुविध सम्पन्न होते रहे। वस्तुतः मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म लोक जीवन को गति प्रदान करने वाली महत्त्वपूर्ण दार्शनिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक शक्ति रही है।

जैन मतावलंबियों ने राज्याश्रय पाकर जैन धर्म को पुष्पित पल्लवित किया। यही नहीं, उन्होंने अपनी बौद्धिक प्रतिभा से राज्य की नीतियों को भी प्रभावित किया और कई शासकों को अपनी कूटनीति, रणचातुर्य और प्रशासनिक कुशलता से लाभान्वित कर अपूर्व स्वामिभक्ति का भी परिचय दिया। राजाओं और श्रावकों के अनुकूल सामंजस्य के कारण जैन धर्म की प्रभावना में निरन्तर वृद्धि हुई तथा इस युक्ति के परिणाम स्वरूप मन्दिर-निर्माण, मूर्तिकला, चित्रकला तथा साहित्य सृजन के क्षेत्र में अपार प्रगति हुई। जैन साहित्य धार्मिक होते हुये भी, अपने कलेवर में ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक ज्ञानकोष समेटे हुये हैं। राजस्थान के विभिन्न मन्दिरों व उपाश्रयों में स्थित, ज्ञात व अज्ञात ग्रन्थ भण्डारों की विशाल व प्रचुर साहित्य-सम्पदा, शोध के

विभिन्न आयाम प्रस्तुत करती है। बड़ी संख्या में ताड़पत्रीय ग्रन्थ, हस्तलिखित ग्रन्थ तथा प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी आदि भाषाओं में रचित ग्रन्थ भाषा के विकास के विभिन्न सोपान प्रदर्शित करते हैं तथा तत्कालीन समाज के विभिन्न पहलुओं को छुपाये हुये हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में एतदर्थ निम्नलिखित ऐतिहासिक स्रोतों को आधार बनाया गया है—

(अ) पुरातत्व :

पुरातात्त्विक सामग्री की उपलब्धि की दृष्टि से राजस्थान पर्याप्त समृद्ध रहा है। सामान्यतया, यह कल्पना की जाती है कि राजस्थान की भौगोलिक विशेषताओं एवं अतिशयताओं के कारण यहाँ मानव की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ नगण्य रही होंगी, लेकिन स्थानीय पुरातात्त्विक स्रोतों की विपुल उपलब्धि इस भ्रान्ति का निराकरण कर देती है।

मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म के विभिन्न सोपानों के अध्ययन और सर्जन के लिये यह सामग्री विश्वसनीय व प्रामाणिक मानी जाती है, क्योंकि संशय की अवस्था में पुरातत्त्व ही इतिहास की अनेक शंकाओं का समाधान प्रस्तुत करता है। पुरातत्त्व सामग्री भी पुनः दो भागों में विभक्त की जा सकती है :

(१) अभिलेख :

अभिलेख अतीत के मूल्यांकन एवं परिणामों के दृष्टिकोण से सर्वाधिक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय साधन हैं। यहाँ तक कि साहित्यिक स्रोतों में प्रदत्त तथ्यों की पुष्टि यदि अभिलेखों से होती है, तो वे तथ्य प्रामाणिक माने जाते हैं। अभिलेख इस प्रकार अन्य साधनों की प्रामाणिकता की कसौटी के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। ये अभिलेख पाषाण-शिलाओं, स्तम्भों, प्रस्तरपट्टियों, भवनों, दीवारों, पत्थर एवं धातु की मूर्तियों, ताम्रपत्रों, मन्दिरों के भागों एवं स्तूपों आदि स्थानों पर उत्कीर्ण मिलते हैं। ये संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, हिन्दी और मिली-जुली भाषाओं में हैं। छठी शताब्दी तक के अभिलेख ब्राह्मी लिपि में, सातवीं से नौवीं शताब्दी तक के कुटिल लिपि में और तदनन्तर देवनागरी लिपि में मिलते हैं। इनमें से अधिकांश अभिलेख, विवेच्य काल की सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक स्थितियों पर बृहद् प्रकाश डालते हैं। इसके साथ ही ये तत्कालीन शासकों के अस्तित्व, कार्य, वंशावलियों, उपलब्धियों, दान, विजय, मृत्यु, राजाज्ञाओं, निर्माण कार्यों, दुर्गों की स्थिति, शासकीय पदाधिकारियों, मुगल सम्राटों एवं अन्य राजाओं से राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों, ऐतिहासिक घटनाओं की तिथियों तथा साहित्यिक स्थिति के बारे में भी प्रामाणिक जानकारी प्रदान करते हैं। अभिलेखों से जैन धर्म के विस्तार, उन्नति एवं इतिहास के सम्बन्ध में भी पर्याप्त सूचनाएँ मिलती हैं।

राजस्थान के अधिकांश जैन मन्दिर अभिलेख युक्त हैं। इससे स्पष्ट है कि राजस्थान में जैन धर्म को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई तथा स्थानीय शासकों को भी इस धर्म के प्रति सद्भावना रही थी।

यद्यपि किसी शासक के जैन मतावलम्बी होने का प्रत्यक्ष उल्लेख किसी अभिलेख में नहीं हुआ है, लेकिन किसी जैन मत विरोधी शासक का उल्लेख भी प्राप्त नहीं होता है। वस्तुतः स्थानीय शासन में जैन मतावलम्बियों को प्रतिष्ठित पद प्राप्त थे, अतः उनके द्वारा जैन धर्म को प्रोत्साहन दिया गया। इन्हीं के प्रभाव से जैन धर्म को राजकीय समर्थन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुआ। इसका स्पष्ट उल्लेख जैन अभिलेखों से प्राप्त होता है।

यहाँ प्राप्त होने वाले जैन अभिलेखों में प्रायः मुनियों के नाम, श्रावकों के नाम, मूर्तियों की प्रतिष्ठा, मन्दिर के निर्माण अथवा जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है। इस नियमित अनुदान की व्यवस्था स्थानीय शासकों द्वारा भी की जाती थी। जैन अभिलेखों का राजस्थान में प्रचलित जैन मत के विभिन्न संघ, गण व गच्छ-भेदों का सतत् इतिहास निर्मित करने के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रमुख एवं प्रतिष्ठित जैन आचार्यों का नामोल्लेख एवं उनकी शिष्य परम्परा का उल्लेख भी अभिलेखों में उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न जातियों एवं गोत्रों के अस्तित्व एवं उत्पत्ति विषयक जानकारी भी प्राप्त होती है।

मोटे तौर पर राजस्थान के जैन लेखों को निम्न भागों में विभक्त कर सकते है[१] :

(क) **मन्दिरों के पुनर्निर्माण एवं प्रतिष्ठा सम्बन्धी लेख :** मन्दिरों के निर्माण, प्रतिष्ठा एवं जीर्णोद्धार सम्बन्धी लेख महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्रदान करते हैं। मध्यकाल में, ११वीं शताब्दी से ही जैन मन्दिरों को मुस्लिम विध्वंस का सामना करना पड़ा, किन्तु जैन श्रेष्ठियों एवं राज्य-शक्ति के धर्मानुराग के कारण इनका बार-बार नवीनीकरण होता रहा। कुछ मन्दिर पूर्णतः ध्वस्त कर दिये गये। उनकी जानकारी भी भग्नावशेषों व अवशिष्ट शिलाखण्डों से ज्ञात होती है। चित्तौड़ क्षेत्र में, गम्भीरी नदी के पुल में, अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र एवं गवर्नर खिज्र खाँ द्वारा कुछ शिलालेख भी चुनवा दिये गये थे, जो महत्त्वपूर्ण जानकारी के स्रोत हैं। कई खण्डित एवं अखण्डित लेख पुरागारों में भी सुरक्षित हैं।

---

१. सोमाणी, आर० वी०-जैन इंस्क्रिप्शन्स ऑफ राजस्थान, पृ० ३।

पूर्ववर्ती काल में मन्दिर की निर्माण योजना सामान्य होती थी, किन्तु १०वीं शताब्दी के पश्चात् से इनमें त्रिक-मंडप, रंग मण्डप, देव कुलिकाएँ आदि भी बनवाये जाने लगे। अलंकरणों व सज्जा की प्रचुरता के कारण एक ही श्रेष्ठी द्वारा सम्पूर्ण रचना करवाना कठिन था, अतः विभिन्न व्यक्तियों द्वारा छोटे-छोटे निर्माण कार्य करवाकर लेख अंकित करवाने की प्रथा प्रारम्भ हो गई थी। पूर्वमध्यकाल में लेख अंकित करवाने के कोई निश्चित मानदण्ड नहीं थे; बड़ा निर्माण कार्य करवाने के उपरान्त छोटे से लेख में इसका सन्दर्भ देने का उदाहरण भी है जैसे—विमल वसहि में पृथ्वीपाल के द्वारा ११४९ ई० में वृहत नवीनीकरण व परिवर्द्धन का उल्लेख एक पंक्ति के लेख में ही है।[१] इसी प्रकार लूण वसहि के जीर्णोद्धार को पेथड़ कुमार द्वारा सम्पन्न करवाने का भी छोटा अभिलेख उपलब्ध होता है।[२] मध्यकाल व उत्तर मध्यकाल में ऐसे लेखों में अपेक्षाकृत अधिक विवरण दिये जाने लगे थे।

(ख) प्रतिमा लेख : प्रतिमाओं के शिलापट्ट या चरण चौकी पर उत्कीर्ण लेखों में प्रारम्भ में 'श्री' या 'ह्रीं' लिखा देखने को मिलता है। तिथि या तो इसके पश्चात् या सबसे अन्त में दी होती है। तदनन्तर, बहुत कम प्रतिमाओं में शासकों के नाम देखने को मिलते हैं, अन्यथा प्रतिमा स्थापक श्रेष्ठी परिवार का विवरण और उसके बाद प्रेरक जैनाचार्य का नाम गण, गच्छ, व कभी-कभी गुरु-शिष्य परम्परा सहित देखने को मिलता है। कुछ प्रतिमा लेखों में सूत्रधार का नामोल्लेख भी असामान्य नहीं है। धातु प्रतिमाओं में अभिलेख पृष्ठ भाग पर उत्कीर्ण देखने को मिलते हैं। कतिपय लेखों में स्थानाभाव के कारण श्रेष्ठी, व्यवहारी, वास्तव्य, उपकेश, गच्छ आदि शब्दों का संक्षिप्त रूप में प्रयोग भी देखने को मिलता है।

(ग) अनुदान सम्बन्धी लेख : राजाओं, श्रेष्ठियों एवं श्रावकों द्वारा प्रदत्त अनुदान सम्बन्धी लेख लम्बी प्रशस्तियों व छोटे लेखों के रूप में उपलब्ध होते हैं। राज्य परिवार-प्रदत्त अनुदान "सुरह" कहे जाते हैं, जिसकी उत्पत्ति "सुरभि" (इच्छा पूर्ण करने वाली दैवीय गाय) से हुई है। सुरह लेख के ऊपर सूर्य, चन्द्र तथा नीचे गाय व बछड़ा प्रतीकात्मक रूप में उत्कीर्ण मिलते हैं। सुरह लेख के प्रारम्भ या अन्त में तिथि, दानदाता या राजा का नाम, वंशवर्णन,

---

१. अयं तीर्थं समुद्धारोअत्द्भुतो अकारि धीमता श्रीमदानंद पुत्रेण श्री पृथ्वीपाल मंत्रिणा" अ० जै० ले० सं०, क्र० ७२।

२. वही, क्र० ३८२।

अनुदान का उद्देश्य, लाभान्वित होने वालों का विवरण तथा अन्त में साक्षियों के नाम व अनुदान का उल्लंघन न करने की चेतावनी दी हुई होती है। अनुदान का उल्लेख सामान्यतः मन्दिर की दैनिक पूजा व्यवस्था, प्रबन्ध, रथयात्रा, अष्टाह्निका पर्व, कल्याणक पर्व, वार्षिक समारोह, धूप, तेल, दीप आदि की पूर्ति तथा तीर्थयात्रियों को करों से मुक्त करने सम्बन्धी देखने को मिलते हैं। अनुदान नकद या द्रव्य के रूप में होते थे। मंडपिका शुल्क का कुछ हिस्सा, वस्तुओं, पशुओं व व्यापारिक पदार्थों के आयात-निर्यात शुल्क का कुछ भाग, निश्चित राशि या निश्चित राशि के ब्याज आदि अनुदान के विभिन्न स्वरूप लेखों में देखने को मिलते हैं।

(घ) **ऐतिहासिक लेख :** जैन अभिलेखों का उद्देश्य ऐतिहासिक घटनाओं का अंकन करना नहीं होता था। किन्तु लेखन की परम्परा के मान्य सिद्धान्तों के अनुपालन में ऐतिहासिक तथ्य स्वयंमेव समाविष्ट हो जाते थे। ऐसे लेख मुख्यतः बड़ी प्रशस्तियों और छिटपुट ऐतिहासिक तथ्यों वाले उपलब्ध होते हैं। बृहद् प्रशस्तियों में प्रारम्भ में तीर्थंकर, शासन देवता या सरस्वती का स्मरण होता है। "विमल वसहि" का १३२१ ई० की शिव स्तुति[१] से प्रारम्भ होने वाला लेख एक अपवाद है। स्तुति के पश्चात् उस क्षेत्र के राजवंश का वर्णन, सम्बद्ध क्षेत्रों का भौगोलिक विवरण, जैनाचार्यों की गुरु शिष्य परम्परा, श्रेष्ठी वंश का विवरण, जाति, गोत्र, कुल, निवास स्थान का नाम, अन्य पुण्य कार्यों का विवरण तथा साधुओं के गण, गच्छ आदि दिये होते हैं। तत्पश्चात् अनुदान का स्वरूप, लेख के रचनाकार, लिपिकर्ता एवं सूत्रधार का नाम तथा सर्वात तिथि दी होती है। सभी प्रशस्तियों में उक्तक्रम का अनुपालन आवश्यक नहीं था। इनमें से कुछ तथ्य लुप्त भी देखने को मिलते हैं। पूर्व-मध्यकालीन अभिलेखों में केवल वर्ष अंकित होता था, किन्तु बाद में मास व तिथि भी अंकित की जाने लगी। लेख के अन्त में "इतिशुभम्" या "छ" भी अंकित देखने को मिलता है।

(ङ) **संघ यात्रा सम्बन्धी लेख :** जैन तीर्थों की यात्रा के निमित्त चतुर्विध संघ के गठन एवं विभिन्न तीर्थों के नामोल्लेख सहित कई अभिलेख देखने को मिलते हैं। कई बार ऐसे उल्लेख स्वतंत्र अभिलेख में नहीं, अपितु किसी वंश विशेष की उपलब्धियों में वर्णित मिलते हैं। कतिपय छोटे लेख तीर्थों के व्यक्तिगत रूप से दर्शन करने सम्बन्धी भी मिलते हैं। आबू में इस प्रकार के १५वीं से १९वीं शताब्दी तक के कई लेख उपलब्ध हैं, जो सामान्यतः स्थानीय

---

१. अ० जै० ले० सं० क्र० १।

भाषाओं में हैं।[१] इनसे संघपति, जैनाचार्य, विभिन्न श्रावकों, जातियों, गोत्रों एवं तत्समय के लोकप्रिय तीर्थों के नाम ज्ञात होते हैं।

(च) अन्य लेख : जैन परम्पराओं में मन्दिर के सम्मुख कीर्ति स्तम्भ या मान स्तम्भ निर्मित करवाने के कई उदाहरण हैं। इनका सर्वप्रथम उल्लेख ८६१ ई० में मण्डोर और रोहिंसकूप में कीर्ति स्तम्भ निर्मित करवाने का मिलता है[२] बघेरवाल जीजा और इसके पुत्र पुण्यसिंह द्वारा निर्मित चित्तौड़ का जैन कीर्ति स्तम्भ राजस्थान के महत्त्वपूर्ण स्मारकों में से हैं।[३] दिगम्बर जैनाचार्यों के अवशेषों पर निर्मित्त स्मारक "निषेधिका" कहलाते हैं; इनके ऊपर अंकित लेख राजस्थान में १०वीं शताब्दी से ही उपलब्ध हैं। इनमें दिवंगत आचार्य का नाम, विधि आदि अंकित होती है। सती लेख और जुझार लेख जैन अभिलेखों में बहुत कम देखने को मिलते हैं। १०वीं से १७वीं शताब्दी के मध्य के नैनवां व बीकानेर से ऐसे कुछ लेख प्राप्त हैं।[४]

(छ) अभिलेखों में प्रयुक्त सन् संवत् : राजस्थान के अधिकांश जैन अभिलेखों में "विक्रम संवत्" का प्रयोग हुआ है। जैसलमेर से १४वीं शताब्दी के पूर्व प्राप्त लेखों में 'भट्टिक संवत्"[५], तदनन्तर भट्टिक व विक्रम संवत् दोनों का तथा कुछ समय पश्चात् के लेखों में केवल विक्रम संवत् का प्रयोग देखने को मिलता है। चित्तौड़ से प्राप्त परमार नरवर्मा कालीन अभिलेख के अलावा "शक संवत्" का प्रयोग सामान्यतः जैन अभिलेखों में नहीं मिलता।[६] गुजरात में लोकप्रिय रहे "सिंह संवत्" का भी कहीं-कहीं प्रयोग देखने को मिलता है। "सिंह संवत्" ३१ का नाडलाई अभिलेख[७] प्रसिद्ध है। जैन परम्परानुसार "वीर निर्वाण संवत्" का प्रयोग भी कई लेखों में देखने को मिलता है।

जैन अभिलेखों की खोज, सम्पादन, प्रकाशन एवं संग्रह की दृष्टि से पूर्णचन्द्र नाहर, मुनि जिनविजय, मुनि जयन्त विजय, अगरचन्द नाहटा, दौलतसिंह लोढ़ा, महोपाध्याय विनयसागर, के० सी० जैन, रामवल्लभ सोमाणी आदि

---

१. वही, क्र० १७४-१८३, ३७९-४०६।
२. एइ, जि० ८. पृ० ८७।
३. अने; अप्रैल, १९६९।
४. वरदा, जि० १४, सं० ४, पृ० ११-१४।
५. इण्डियन हिस्ट्री क्वाटरली, सितम्बर, १९५९, पृ० २२७-२३८।
६. सोमाणी, आर वी०-वीरभूमि चित्तौड़, पृ० २१९-२२०।
७. प्राजैलेस, भाग २, क्र० ३२४।

के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार जैन अभिलेख पर्याप्त मात्रा में प्रकाश में लाये जा चुके हैं और निरन्तर लाये जा रहे हैं।

(२) मन्दिर, मूर्तियाँ एवं स्मारक :

मध्ययुगीन जैन मन्दिर, मूर्तियाँ एवं स्मारक तत्कालीन धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति के दर्पण हैं। विभिन्न प्रकार के भवन, प्रासाद, सभा मण्डप, आवासीय गृह, चैत्य, आदि अपने मूल रूप में या भग्नावशेष रूप में अपने पिछले इतिहास को प्रकाशित करते हैं। अपने साधारण स्वरूप में तो ये कलात्मकता ही दर्शाते हैं, किन्तु विशेष अध्ययन के उपरान्त तत्कालीन धार्मिक अवस्था का भी परिचय देते हैं। जैनपूजा पद्धति और धार्मिक विश्वासों को जानने में ये बहुत सहायक हैं। मन्दिर और उनमें उत्कीर्ण अनेक मूर्तियाँ तत्कालीन सभ्यता, संस्कृति, धार्मिक विश्वास और कला के गौरव का सम्यक् चित्रण करती हैं। इसी प्रकार कई नगरों के भग्नावशेष काल विशेष के वास्तु, नगर-निर्माण तथा शिल्प-शैलियों के साक्षी हैं। प्राचीन इमारतों की प्राचीरों, भित्तियों, पाषाण-पट्टियों एवं मकानों के खंडहरों से, सामाजिक स्थिति का अच्छा बोध होता है। मन्दिर एवं मूर्तियाँ, वास्तुकला एवं मूर्तिकला का परिज्ञान ही नहीं कराते, वरन् अपने विकास की कहानी भी कहते हैं। इनसे जन-जीवन की झलक के साथ-साथ समाज की विचारधारा का भी प्रतिनिधित्व होता है। ये स्मारक जैन देवालयों की समृद्धि, जैन समाज की आर्थिक सम्पन्नता एवं उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा के भी सूचक हैं।

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद
की पुण्य स्मृति में

—मीरा बैद
८३-बी, विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता-७००००६
फोन : २४१-०७१९

प्रवचन

योग्यो ह्येवंविधः प्रोक्तो जिनैः परिहितोद्यतैः ।
फलसाधनभावेन नातोऽन्यः परमार्थतः ॥

महान् श्रुतधर परम कृपानिधि आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वरचित 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में गृहस्थजीवन का विशेष धर्म बताया है। सामान्य धर्मों को स्वीकार और पालन हर कोई व्यक्ति कर सकता है परन्तु विशेष धर्म को स्वीकार विशिष्ट योग्यता-सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है।

—जिसकी आत्मा मिथ्यात्व से मुक्त हुई हो,
—जिसकी आत्मा तीव्र क्रोधादि कषायों से मुक्त हुई हो,
—जिस मनुष्य ने जीव-अजीवादि तत्त्वों का ज्ञान पाया हो,
—जिस के मन में मोक्ष के प्रति प्रीति और संसार के प्रति अप्रीति पैदा हुई हो,
—जो मनुष्य सत्त्वशील हो,
—जिसने धर्म की उपादेयता समझ ली हो,
—विशेष धर्म को स्वीकार करने की और पालन करने की स्वयं की शक्ति का जो मनुष्य सूक्ष्मता से विचार कर सकता हो,

ऐसा मनुष्य ही विशेष धर्म (बारह व्रतमय धर्म) को स्वीकार करने के लिये योग्य है, पात्र है, समर्थ है। दूसरा व्यक्ति नहीं। यह प्रतिपादन (योग्यता का) परम हितकारी परमात्मा जिनेश्वरदेवों ने किया है।

परमात्मा ही परम हितकारी

योग्यता की बात कहने वाले कोई सामान्य संत-महंत या विद्वान् नहीं हैं, परन्तु वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर हैं। हमें उन पर, उनकी कही हुई बातों पर विश्वास करना चाहिए। जो वीतराग होते हैं, जो सर्वज्ञ होते हैं जो 'जिन' होते हैं, वे विश्वसनीय होते हैं। चूंकि वे सकल जीवलोक का हित करने वाले होते हैं। वे सभी स्वार्थों से मुक्त होते हैं।

पहले मैं आप को 'जिन' शब्द का अर्थ-भावार्थ बताता हूं। यह समझना आप लोगों के लिए अति आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि 'जिन' व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। यह गुणवाचक नाम है। दूसरी बात—'जिन' शब्द का अर्थ है विजेता। जो महापुरुष अपने भीतर के शत्रु राग-द्वेष (काम-क्रोध,

लोभ, मद, मान, हर्ष)··· को पूर्णतया पराजित करते हैं, हरा देते हैं, नष्ट कर देते हैं वे 'जिन' कहलाते हैं। उनमें राग-द्वेष का नामोनिशान नहीं रहता है। भविष्य में भी कभी उनकी आत्मा रागी या द्वेषी नहीं बनेगी। अनन्तकाल बीतने पर भी नहीं बनेगी। सदा के लिये वह 'जिन' बनी रहेगी।

ये 'जिन' दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार है तीर्थंकरों का और दूसरा प्रकार है सामान्य केवल ज्ञानियों का। सभी तीर्थंकर जिन होते हैं। यानी राग द्वेष के विजेता होते हैं। वैसे जो तीर्थंकर नहीं बनते हैं वैसे केवल ज्ञानी (पूर्णज्ञानी) भी सभी जिन होते हैं। यानी राग-द्वेष से मुक्त होते हैं।

जो तीर्थंकर होते हैं वे सभी 'जिन' ही होते हैं, परन्तु जितने 'जिन' होते हैं वे सभी तीर्थंकर नहीं होते हैं, यह बात स्पष्टता से समझ लेना। एक काल-चक्र में (एक उत्सर्पिणी + एक अवसर्पिणी) में तीर्थंकर मात्र ४८ ही होते हैं, जब कि 'जिन' असंख्य आत्मायें होती हैं।

जो 'जिन' बनते हैं वे निर्वाण पाते हैं। उनको जन्म नहीं लेना पड़ता है, न मरना पड़ता है। वे निर्वाण के बाद अशरीरी (शरीर रहित) ही रहते हैं। आत्मा अपने मूल स्वरूप में अवस्थित रहती है। जिस को शास्त्रों में सिद्धशिला कहा गया है, वहाँ पर ऐसी अनन्त विशुद्ध आत्मायें अवस्थित हैं।

'जिन' को 'वीतराग' भी कहते हैं 'जिनेश्वर' भी कहते हैं और 'अरिहंत' भी कहते हैं। इन शब्दों का अर्थ एक ही होता है। ऐसे 'जिन' निःस्वार्थ होते हैं यथार्थवादी होते हैं।

और 'जो निःस्वार्थ होते हैं वे ही सच्चे परहितकारी होते हैं। जिन को स्वयं के स्वार्थ साधने होते हैं वे परहित नहीं कर सकते। परहित करने जायेंगे कभी, तो उसमें भी अपने स्वार्थोंकी साधना तो रहेगी ही।

'जिन' को कोई एकाध भी स्वार्थ नहीं होता है। वे जो कुछ उपदेश देते हैं वह जीवों के हित के लिये देते हैं। सुख के लिये देते हैं, कुशलता के लिये देते हैं। ऐसे जिन-जिनेश्वर भगवन्त हमारे आराध्य परमात्मा हैं। वे ही हमारे उपास्य हैं और विश्वसनीय हैं। उनके हर उपदेश को बिना शंका किये, हमें मानना चाहिए। उन्होंने जो कुछ कहा है हम सब के हित के लिये, कल्याण के लिए कहा है। उनकी परम करुणा थी सकल जीवनसृष्टि के प्रति।

सभा में से :

आज ऐसे "जिन" क्या अपने देश में या विश्व में कहीं पर भी हैं ?

महाराजश्री :

नहीं हैं अपने देश में, नहीं हैं विदेशों में। हाँ, धर्मशास्त्रों में ऐसे एक प्रदेश का नाम व वर्णन आता है, जिसको 'महाविदेहक्षेत्र' कहते हैं, वहां ऐसे 'जिन'

वर्तमान में भी हैं। बीस तीर्थंकर अभी वहाँ पर हैं। लेकिन अपने वहाँ जा नहीं सकते हैं। न पैदल जा सकते हैं, न कार से, न हवाई जहाज से वहाँ जा सकते हैं।

अपने देश में दो हजार वर्ष पूर्व अंतिम 'जिन' हुए जंबूस्वामी। जंबूस्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के प्रशिष्य थे। महावीर स्वामी के शिष्य थे सुधर्मास्वामी और उनके शिष्य जंबूस्वामी। जंबूस्वामी के निर्वाण के बाद कोई भी आत्मा यहां इस देश में 'जिन' नहीं बनी है और हजारों-लाखों वर्ष तक बनेगी नहीं।

यह बात भी जिनेश्वरों ने ही कही है। मैंने धर्मशास्त्रों में पढ़ी है और आपको बता रहा हूं। जिनेश्वरों की बातें हमें माननी ही चाहिये। चूंकि वे परम हितकारी हैं। उनकी बात पर विश्वास नहीं करेंगे तो किस की बात पर विश्वास करेंगे? परम हितकारी और परम सुखकारी के प्रति पूर्ण श्रद्धा से नतमस्तक होना चाहिये और निःशंक बन, उनके मार्ग का अनुसरण करना चाहिये।

इस ग्रन्थ में आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने जो कुछ लिखा है, वह सब कुछ जिनेश्वरों का कहा हुआ ही लिखा है। आचार्यदेव, जिनेश्वर-शासन को पूर्ण समर्पित महापुरुष थे। इसलिये वे भी उतने ही श्रद्धेय हैं जितने जिनेश्वर भगवंत! जिनेश्वर-शासन की अविच्छिन्न परम्परा में, प्रायः कोई भी व्यक्ति जिन वचन से विपरीत नहीं जा सकता।

हर क्षेत्र में योग्यता अपेक्षित :

जिनेश्वर भगवंतों ने विशेष धर्म के स्वीकार एवं पालन के लिये योग्यता की आवश्यकता बतायी है। संसार के प्रत्येक क्षेत्र में योग्यता को महत्त्व दिया गया है न? आप को स्कूल-कॉलेज में अध्यापक होना है, आप को न्यायालय में वकालत करनी है, आप को डॉक्टर बन रूग्ण लोगों का उपचार करना है, आपको सरकारी प्रतिष्ठानों में नौकरी करनी है··· तो आप को अपनी योग्यता बतानी पड़ती है। योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है। उस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये योग्यता प्राप्त करना अनिवार्य होता है।

जिस क्षेत्र में, जिस कार्य को करना है, बिना क्षति के कार्य करना है तो योग्यता चाहिये ही। इसलिये अपने-अपने कार्यों के लिये योग्य व्यक्तियों को खोजते हैं। शरीर में रोग होता है तो उस रोग के निष्णात डॉक्टर के पास जाते हैं न? संसार-व्यवहारों में कोई उलझन पैदा होती है तो सुयोग्य वकील के पास जाते हैं न? अरे, लड़के को ट्यूशन लेना होता है तो भी सुयोग्य शिक्षक खोजते हो! और महिला को बरतन मांजनेवाला नौकर चाहिये तो भी

सुयोग्य-प्रामाणिक नौकर खोजते हो। तो फिर आत्मा की विशुद्धि करने वाले धर्म को स्वीकार करनेवाला व्यक्ति सुयोग्य नहीं चाहिये क्या? विशेष धर्म का पालन करने के लिये योग्यता चाहिए ही।

गुजरात का राजा कुमारपाल [विक्रम की बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में] वैसा ही सुयोग्य महापुरुष था। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी ने उसमें, विशेष धर्म की योग्यता देखी थी।

एकशिला नगरी में नरवीर की मृत्यु हुई। नरवीर की आत्मा सौराष्ट्र के 'दधिस्थली' गांव में राजा त्रिभुवनपाल की रानी काश्मीरा देवी के उदर में गर्भरूप में अवतरित हुई। जब उसका जन्म हुआ, उसका नाम कुमारपाल रखा गया। इस कुमारपाल और आचार्यदेव हेमचन्द्रसूरीश्वरजी का ओजस्वी और तेजस्वी स्वर्ण इतिहास लिखा गया है। बहुत ही प्रेरणादायी और रोमांचक है यह इतिहास। इस इतिहास को लिखा है आचार्य श्री जयसिंहसूरिजी ने। संस्कृत भाषा में महाकाव्य के रूप में लिखा है उन्होंने।

चावड़ावंश और चौलुक्यवंश :

वि. सं०. ८०२ में 'चावड़ावंश' के पराक्रमी राजा वनराज ने अणहिल्लपुर पाटण बसाया। वनराज, आचार्य श्री शीलगुणसूरिजी से उपकृत था और प्रभावित था। वह आचार्यदेव को अपना गुरु मानता था। आचार्यदेव की प्रेरणा से उसने पाटण में भव्य जिन मंदिर का निर्माण कराया और आचार्यदेव के करकमलों से प्रभु प्रतिष्ठा करवायी।

पचास वर्ष की उम्र में वनराज राजा बना था और साठ वर्ष तक उसने राज्य किया था। एक सौ दस वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर वह स्वर्गवासी हुआ था। उसके बाद राजा योगराज ने ३५ वर्ष राज्य किया। क्षेमराज ने २५ वर्ष राज्य किया। भूवड़राज ने २९ वर्ष, वैरसिंह ने २५ वर्ष, रत्नादित्य ने १५ वर्ष और सामन्तसिंह ने ७ वर्ष राज्य किया था। इस प्रकार गुजरात में चावड़ावंश का १९६ वर्ष शासन रहा। सामन्तसिंह की मृत्यु के साथ चावड़ा-वंश का अन्त हो गया। उसके बाद चौलुक्य वंश का प्रारम्भ हुआ।

राजा सामन्तसिंह की बहन का नाम था लीलावती। लीलावती की शादी 'राज' नाम के राजा के साथ हुई थी। लीलावती ने एक पुत्र को जन्म दिया। जन्म 'मूलनक्षत्र' में हुआ था, इसलिए उसका नाम मूलराज रखा गया। मूलराज राजा सामन्तसिंह के पास रहता था। सामन्तसिंह को मद्यपान करने का व्यसन था। एक बार वह शराब के नशे में था, उसने मूलराज को राज-सिंहासन पर बिठा दिया! परन्तु जब नशा उतर गया·· उसने भानजे को राजसिंहासन पर से उठा लिया। ऐसा एक बार नहीं दो बार किया सामन्तसिंह

ने। इससे मूलराज को गुस्सा आ गया। उसने सामन्तसिंह को मार दिया और स्वयं गुजरात का राजा बन गया।

मूलराज चौलुक्यवंश का था। उसके बाद चामुंडराज, बल्लभराज, दुर्लभराज और भीमदेव नाम के क्रमशः राजा बने। भीमदेव के दो पुत्र थे। एक का नाम था क्षेमराज और दूसरे का नाम था कर्ण।

कुमारपाल का जन्म

भीमदेव की मृत्यु के बाद गुजरात का राजा कर्ण बनता है। क्षेमराज स्वेच्छा से अपना राज्याधिकार छोटे भाई कर्ण को दे देता है। राजा कर्ण, क्षेमराज के पुत्र देवप्रसाद को 'दधिस्थली' का राज्य देता है। देवप्रसाद को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है, उसका नाम रखा जाता है त्रिभुवनपाल।

भीमदेव से त्रिभुवनपाल तक का इतिहास, आचार्यदेव 'मेरुतुंगसूरिजी' ने 'प्रबन्धचिन्तामणि' ग्रन्थ में दूसरे ढंग से बताया है। इतिहास में ऐसे मतान्तर आते हैं।

जिस समय राजा भीमदेव राज करता था उस समय राजधानी पाटण में 'चौलादेवी' वारांगना रहती थी। जैसा उसका अद्‌भुत रूप था वैसे उसके गुण अद्‌भुत थे। वारांगना होते हुए भी वह धर्म मर्यादा का इतना सुन्दर पालन करती थी कि पतिव्रता स्त्री भी शायद उतना पालन नहीं कर सके। चौलादेवी की यह प्रशंसा कर्णोपकर्ण राजा भीमदेव ने सुनी। भीमदेव को आश्चर्य हुआ। 'एक वारांगना में ऐसे गुण हो सकते हैं क्या ? मुझे परीक्षा करनी चाहिये।' ऐसा सोच कर भीमदेव ने अपने विश्वसनीय अनुचर के साथ सवा लाख रुपये के मूल्य की रत्नजटित तलवार चौलादेवी को भेजी।

उस काल में वारांगनायें इस प्रकार अमुक निर्धारित द्रव्य से प्रेमी के साथ निश्चित समय के लिये बंध जाती थी। उस समय में दूसरे किसी भी पुरुष के साथ परिचय नहीं रखती थी। एक समर्पित पत्नी की तरह वह रहती थी।

भीमदेव को तो परीक्षा करनी थी। उसने चौलादेवी की हवेली के आस-पास गुप्तचरों को नियुक्त कर दिए। उसने सोचा कि 'मैं रात्रि में उस वारांगना के पास जाऊँगा।' परन्तु उसी रात्रि में उसको मालव देश पर आक्रमण करने के लिए सैन्य के साथ पाटण से प्रस्थान करना पड़ा। वह चौला देवी के पास नहीं जा सका।

मालव देश के युद्ध में दो वर्ष लग गए। भीमदेव को दो वर्ष वहीं बिताने पड़े। मालव पर विजय प्राप्त कर जब वह पाटण लौट आया, उसको एक दिन चौला देवी याद आयी। उसने उन गुप्तचरों को बुलाया और चौला देवी के विषय में पूछा। गुप्तचरों ने कहा :

'महाराजा, चौला देवी ने एक महापतिव्रता सन्नारी की तरह शीलव्रत का पालन किया है। उसकी एक भी गल्ती हम नहीं देख पाये हैं। वह आपके प्रति ही निष्ठावान् रही है'।

इस प्रकार गुप्तचरों का वृत्तान्त सुन कर और नगर में भी चोला देवी की प्रशंसा सुन कर, भीमदेव चौलादेवी के प्रति विशेष आकर्षित हुए। चौला देवी के साथ शादी कर, उसको अपनी रानी बनाए। हालांकि राजपरिवार में बहुत विरोध हुआ था, परंतु भीमदेव ने विरोध की परवाह नहीं की। चौलादेवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम हरपाल था। हरपाल के पुत्र का नाम त्रिभुवनपाल और त्रिभुवनपाल के पुत्र का नाम कुमारपाल।

सिद्धराज का जन्म

भीमदेव की मृत्यु के बाद गुजरात का राजा कर्ण हुआ। राजा कर्णदेव की पट्टरानी का नाम मीनलदेवी था।

राजा कर्ण और मीनलदेवी के सम्बन्ध में कलिकालसर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसुरीश्वरजी ने 'द्वयाश्रम' महाकाव्य में इस प्रकार वृत्तान्त बताया है—

एक दिन कर्णराजा के पास एक चित्रकार आया। वह एक राजकुमारी का चित्र लेकर आया था। उसने कर्ण को कहा: 'हे गुर्जरेश्वर, दक्षिण प्रदेश में चन्द्रपुर नाम का नगर है। वहाँ का राजा है जयकेशी। जयकेशी की सुंदर राजकुमारी मीनलदेवी का यह चित्र है।' उस चित्रकार ने कर्ण को मीनलदेवी का चित्र दिया। कर्ण चित्र देखते ही मंत्रमुग्ध हो गया। चित्रकार ने कहा: 'महाराज, इस राजकुमारी को किसी ने आपका चित्र बताया है। जब से उसने आपका चित्र देखा है तब से वह आपके प्रेम में पड़ गई है और मन से उसने आपका पतिरूप में वरण कर लिया है।'

राज कर्ण ने चित्रकार का धन-धान्य से सत्कार कर विदा किया। कुछ दिनों के बाद राजा जयकेशी के मंत्री कर्णराजा के दरबार में उपस्थित हुए। उसने कर्णराजा को प्रणाम कर कहा: 'हे गुर्जरेश्वर, हम चन्द्रपुर के राजा जयकेशी के सेवक हैं। महाराजा ने आपके लिये एक भेंट भेजी है। परंतु वह भेंट आप निरन्तर आपके पास ही रखें दूसरे को नहीं दें, तो ही हम दे सकते हैं।'

राजा कर्ण बात समझ गया। उसने कहा: 'आपकी भेंट को मैं सहर्ष स्वीकार करूंगा, परन्तु इसके पूर्व आप मेरा आतिथ्य ग्रहण करें।' राजा जयकेशी के मंत्रीमंडल को सुन्दर आवास में ठहराया गया। रात्रि के समय रूपपरिवर्तन कर राजा कर्ण ने मीनलदेवी को देख लिया। उसका अद्भुत रूप

देखकर वह मुग्ध हो गया । दूसरे दिन धूमधाम से कर्ण ने मीनलदेवी से शादी कर ली । जयकेशी के मंत्रीमंडल ने अनेक हाथी, घोड़े...रत्न वगैरह भेंट किये ।

रानी मीनलदेवी ने एक पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम था सिद्धराज ।

आचार्यश्री हेमचन्द्रसूरिजी का जन्म :

'कुमारपाल-चरित्र' में दो ऐतिहासिक पुरुष कुमारपाल और सिद्धराज के जन्मवृत्तान्त बताने के पश्चात् अब तीसरे महापुरुष हेमचन्द्रसूरिश्वरजी के जन्म का वृत्तान्त बता रहा हूं ।

वह समय था बारहवीं शताब्दी का मध्यकाल । गुजरात में उस समय साक्षात् धर्मपूर्ति आचार्यश्री देवचन्द्रसूरिजी जैनधर्म की सुवास प्रसारित करते हुए हजारों स्त्री-पुरुषों को सन्मार्ग बता रहे थे । आचार्यदेव एक बार धंधुका नगर में पधार गये । आचार्यदेव के दर्शन से पूरा जैनसंघ आत्मविभोर हो गया ।

धंधुका में 'मोढ' जाति का 'चाचग' नाम का धनाढ्य श्रेष्ठि रहता था । वह धर्मप्रिय व बुद्धिमान था । उसकी पत्नी का नाम पाहिनीदेवी था । पाहिनी परम श्राविका थी । एक दिन रात्रि के समय पाहिनीदेवी को स्वप्न आया कि उसको चिन्तामणि रत्न प्राप्त हुआ और वह रत्न उसने गुरुदेव को समर्पित कर दिया है । स्वप्न देखकर वह जगी और शेष रात्रि धर्मध्यान में व्यतीत की । प्रातःकाल वह जिनमंदिर गई । परमात्मा के दर्शन कर वह उपाश्रय में गुरुदेवश्री देवचन्द्रसूरीश्वरजी के पास गई । गुरुदेव को वंदन कर उसने अपना स्वप्न कह सुनाया । उसने पूछा : 'गुरुदेव इस स्वप्न का फल क्या होगा ?' गुरुदेव ने कहा : 'पुण्यशालिनी, तू कोई असाधारण गुणवाले पुत्र की जननी होगी । वह पुत्ररत्न तू मुझे अर्पण करेगी । तेरा वह पुत्र भविष्य में जिनशासन की अपूर्व शोभा बढ़ायेगा ।'

पाहिनीदेवी गुरुदेव के वचन सुनकर आनंदविभोर हो गई । उसने कहा : 'गुरुदेव, तथास्तु ! आपने कहा वैसा ही हो !' उसने अपने वस्त्र के छोर पर गांठ बांध ली, जैसे कि स्वप्न-फल को ही बांध लिया !

उसी रात्रि में पाहिनीदेवी को कुक्षी में एक उत्तम जीव अवतरित हुआ ! पाहिनी गर्भवती हुई । गर्भकाल पूर्ण होने पर उसने पुत्र को जन्म दिया । चाचग श्रेष्ठि ने पुत्र का जन्मोत्सव किया । बारवें दिन पुत्र का नाम 'चांगदेव' रखा गया । यही चांगदेव आगे जाकर कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरिजी बनते हैं ।

गुरुदेव चांगदेव में योग्यता देखते हैं :

गुरुदेव देवचन्द्रसूरीश्वरजी धंधुका से विहार कर जाते हैं । कुछ वर्ष अन्यत्र विचरण कर वे पुनः धंधुका में पधारते हैं । उस समय चांगदेव छः सात साल का हो गया था ।

एक दिन आश्चर्यकारी घटना घटती है । आचार्यदेव जिनमंदिर में दर्शन करने गये थे । तीन प्रदक्षिणा करके वे परमात्मा की प्रार्थना करने में लीन थे । उसी समय पाहिनी देवी के साथ चांगदेव मंदिर में पहुंचा । और वह गुरुदेव के आसन पर बैठ गया । पाहिनीदेवी परमात्मा के दर्शन में लीन थी । गुरुदेव ने चांगदेव को अपने आसन पर बैठा देखा । उनके मुंह पर स्मित आ गया । चांगदेव भी गुरुदेव के सामने मंद-मंद हंस रहा है । गुरुदेव ने उस समय पाणिनीदेवी को कहा : 'हे सुशीले, तुझे याद है तेरे स्वप्न की बात ? तूने स्वप्न में चिन्तामणि रत्न देखा था ? और वह रत्न तूने गुरु को दे दिया था । देवी, वही यह तेरा पुत्र-रत्न है । पूर्ण पुण्य के उदय से जो स्वप्न आते हैं वे गलत नहीं होते । देख, यह मेरे आसन पर बैठ गया है न ? वैसे यह मेरे पाट पर, मेरा उत्तराधिकारी बन कर बैठेगा । यह लड़का साधु बनने योग्य है, आचार्य बनने योग्य है । हे पुण्यशालिनी, छोटे लड़के को हम पात्रता-योग्यता देखे बिना दीक्षा नहीं देते हैं । इसलिये कहता हूं कि तू तेरा यह रत्न मुझे दे दे । पूरे देश में यह आर्हत् धर्म का साम्राज्य प्रस्थापित करने वाला होगा ।'

पाहिनीदेवी, आचार्यदेव के मधुर वचनों का श्रवण कर आनन्दविभोर हो गई । उस ने नतमस्तक हो, विनीत भाव से कहा : 'गुरुदेव, आप इस लड़के के पिता से प्राप्त कर लें ।' पाहिनीदेवी ने अपनी स्वीकृति दे दी ।

आचार्य श्री देवचन्द्रसूरिश्वरजी में योग्यता-अयोग्यता देखने का विशिष्ट ज्ञान था । उन्होंने चांगदेव में साधु बनने की योग्यता देखी थी, उन्होंने मात्र चांगदेव की तत्कालीन भावना को ही महत्व नहीं दिया था, 'इस लड़के की दीक्षा लेने की भावना है, यह दीक्षा लेना चाहता है...' इतने मात्र से दीक्षा देना योग्य नहीं है । लड़का यौवन में आने के बाद भी इन्द्रियपरवश नहीं बनेगा, काम विजेता बनेगा, पाँच महाव्रतों का पालन करने में सक्षम बना रहेगा, ज्ञान-ध्यान में तत्पर रहेगा...।' ऐसी निश्चित प्रतीति, दीक्षा देने वाले गुरु को होनी चाहिए ।

वर्तमान समय में जब कि समाज का वातावरण ज्यादा कलुषित बना है, विषयविकारों का नग्न प्रदर्शन बढ़ गया है . ऐसे समय में युवा साधु—साध्वी को अपने महाव्रतों के पालन में दृढ़ रहने की मौलिक योग्यता होना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है । साधुजीवन में निर्विकारिता महत्वपूर्ण गुण है ।

कुछ आत्मायें जन्म से निर्विकार होती है। पूर्व जन्मों के संस्कार लेकर जो आत्मायें आती हैं...वे सहजता से निर्विकार होती हैं। ऐसे जीवों को आठ वर्ष की उम्र में साधुजीवन देने में कोई दिक्कत नहीं आती है। ऐसे जीव यौवन में भी अविकारी रह सकते हैं।

अन्यथा, जब विषयवासना जाग्रत होती है, सेक्सी वृत्तियाँ प्रबल बन जाती है, उस समय उन वासनाओं पर संयम करना मामूली बात नहीं है। भयानक आग को बुझाना सरल है, कामवासना की प्रचण्ड आग को बुझाना मुश्किल बात है। छोटा-बड़ा निमित्त मिलने पर संयम की शक्ति [Controlling Power] खत्म हो जाती है और संयमी पलभर में असंयमी बन जाता है। वह अपने महाव्रत को खो देता है।

यौवनकालीन आवेग या तो शान्त होने चाहिए, अथवा उन आवेगों पर संयम रखने की प्रचंड ताकत होनी चाहिये। साधुजीवन की यह योग्यता अनिवार्य रूप से देखनी चाहिए। ऐसी योग्यता है या नहीं—इस बात का निश्चित रूप से निर्णय करने का विशिष्ट ज्ञान होना चाहिये। श्री देवचन्द्र-सूरीश्वरजी में ऐसा ज्ञान था। उन्होंने चांगदेव में ऐसी योग्यता देख कर, उसकी माँ से चांगदेव की भिक्षा मांगी थी।

बिना योग्यता देखे, दीक्षा देने के परिणाम अच्छे नहीं आते है। दीक्षा लेनेवाले में यह बात सोचने की क्षमता होनी चाहिये कि 'क्या मैं पाँच महाव्रतों का पालन कर सकूँगा ?' गृहस्थ जीवन के बारह व्रत लेने से पूर्व जब ग्रन्थकार गंभीरता से सोचने का आदेश देते हैं, तब साधुजीवन के महाव्रतों के लिये तो सोचे बिना कैसे चल सकता है ?

सभा में से : आठ-दस साल का बच्चा इतनी गंभीर बातें कैसे सोच सकता है ?

महाराजश्री : नहीं सोच सकता है। इसलिये शिक्षा देनेवाले गुरु को सोचना चाहिये अपनी ज्ञानदृष्टि से कि 'यह लड़का क्या पाँच महाव्रतों का पालन कर सकेगा ?' ज्ञानोपासना में लीन हो सकेगा ? गुरु-आज्ञा का पालन कर सकेगा ? वगैरह बातें गंभीरता से सोचनी चाहिये। भविष्य को जानने का ज्ञान होना चाहिये ! ऐसे ज्ञान के बिना निर्णय नहीं कर सकते हैं।

वर्तमान में लड़का कितना भी अच्छा लगता हो, परंतु यदि उसका भविष्य साधुता को दृष्टि से अच्छा नहीं दिखता हो, तो उसको दीक्षा नहीं देनी

चाहिये ! शक्ति और योग्यता के बिना व्रत-महाव्रत नहीं लेने चाहिए। व्रत-पालन की शक्ति नहीं होने पर भी व्रत-महाव्रत लेने पर व्रतभंग होने की सम्भावना रहती है, इससे बहुत बड़ा नुकसान होता है।

समग्र जीवसृष्टि का परम हित करने वाले तीर्थंकर भगवंतों ने इसलिए ही योग्यता का आग्रह किया है व्रत लेने वालों के लिये, योग्य व्यक्ति को ही धर्मप्राप्ति का समुचित फल प्राप्त होता है। जिसमें योग्यता नहीं है (पहले बतायी है वैसी) वह मनुष्य धर्म ग्रहण नहीं कर सकता। यदि ग्रहण कर भी ले, धर्मप्राप्ति का फल उसको नहीं मिल सकता।

आचार्यदेव, चांगदेव को लेते हैं :

आचार्यदेव श्री देवचन्द्रसूरीजी ने चांगदेव में महान् योग्यता देखी थी। उन्होंने चाचग श्रेष्ठि को अपने पास बुलवा कर प्रेम से व वात्सल्य से समझाया। पुत्रस्नेह का बंधन भी सामान्य नहीं होता है। जल्दी टूटता नहीं है। आचार्यदेव ने धैर्य से और बुद्धि से चाचग को समझाया। चाचग को आचार्यदेव के ज्ञान और संयम के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी। वह आचार्यदेव से प्रभावित हुआ और उसने गुरुदेव को चांगदेव समर्पित कर दिया।

चांगदेव को, चारित्रमार्ग पर जाने के लिये माता और पिता के आशीर्वाद मिल गये ! महान पुण्य के उदय के बिना यह बात सम्भव नहीं होती। चांगदेव रूपवान था, बुद्धिमान था और जनप्रिय था। घर में सम्पत्ति थी, समाज में मान और भविष्य उज्जवल था। ऐसी स्थिति में छोटे लड़के को त्यागमार्ग पर, मोक्षमार्ग पर चलने के संयोग मिलना... असाधारण पुण्योदय से ही संभव होता है।

सुयोग्य गुरुदेव का संयोग मिल गया चांगदेव को ! मात्र सुयोग्य ही नहीं, समर्थ गुरुदेव मिल गये उस को ! बिना पुरुषार्थ किये ऐसे गुरुदेव का संयोग प्राप्त होना, पूर्व संचित पुण्यकर्म का ही फल मानना चाहिए।

साथ-साथ माता-पिता भी कैसे श्रेष्ठ विचार के मिले ! 'पुत्र त्याग के मार्ग पर चल कर सुखी बनेगा...मनुष्य जीवन सफल बनायेगा...।' ये विचार थे माता-पिता के। और पुत्रस्नेह का बंधन भी इतना प्रगाढ़ नहीं था। ऐसे माता-पिता मिलना, पूर्वसंचित पुण्य का उदय ही मानना होगा।

चांगदेव को क्षतिरहित शरीर मिला था, पाँचों इन्द्रियाँ परिपूर्ण थी, सुन्दरता थी, स्पष्ट और मधुर वचनशक्ति थी और सौभाग्य भी अद्भुत था। यह सब पुण्यकर्म का फल था।

आचार्यदेव ने, चांगदेव में सब प्रकार की योग्यता देखी थी और वे बहुत ही प्रसन्न थे। चांगदेव में उन्होंने 'लाखों का तारणहार' देखा था। चांगदेव में उन्होंने 'महान् ज्योतिर्धर' देखा था। चांगदेव में उन्होंने 'कलिकाल का केवलज्ञानी' देखा था।

ऐसे चांगदेव को लेकर आचार्य धंधुका से खंभात की ओर विहार कर देते हैं।

'धर्मबिन्दु' के रचयिता आचार्यदेव, सद्धर्म को स्वीकार करने वालों की योग्यता बताकर, 'धर्मग्रहण' के विषय में एक मार्मिक प्रश्न उठाते हैं।

□●□

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA

Export House recognised by Govt. of India

Proprietor : **SANJIB BOTHRA**

8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001

Phone : 201029/6256/4730
Telex : 021-2333 ARBI IN
Fax No. : 0091-33290174

पूर्वानुवृत्ति

क्रमांक	वि० सं०	तिथि, वार	आचार्य का नाम	प्रतिमा लेख/स्तम्भ	प्रतिष्ठास्थान	संदर्भ ग्रन्थ
९१.	१५१५	मार्गशीर्ष वदि ११	मुनितिलकसूरि के पट्टधर गुणाकरसूरि	संभवनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक ९८५
९२.	१५१७	माघ वदि १२ गुरुवार	,,	श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	,,	वही, लेखांक १००३
९३.	१५१९	आषाढ़ वदि ९ शनिवार	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर अलवर	नाहर, पूर्वोक्ति भाग १ लेखांक ९९२
९४.	१५१९	पौष वदि १३ मंगलवार	श्री सूरि	संभवनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	संभवनाथ देरासर झवेरीवाड़, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्ति भाग १ लेखांक ८६४

९५.	१५२३	वैशाख वदि ४ गुरुवार	गुणदेवसूरि के पट्टधर रत्नदेवसूरि	कुन्थुनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शंखेश्वर पार्श्वनाथ देरासर, वीरमगाम	वही, भाग १ लेखांक १५०५
९६.	१५२४	वैशाख सुदि ३ सोमवार	,,	मुनिसुव्रत की धातु की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, शेखनो पाडो, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक १०१९
९७.	१५२४	वैशाख सुदि ६ गुरुवार	रामचन्द्रसूरि	कुन्थुनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, भरुच	वही, भाग २, लेखांक ३१२
९८.	१५२५	ज्येष्ठ सुदि ५ बुधवार	गुणदेवसूरि के संतानीय जिनदेवसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	बालावसही, शत्रुञ्जय	मुनि कान्तिसागर शत्रुञ्जय वैभव लेखांक १८७
९९.	१५२७	ज्येष्ठ वदि ४ बुधवार	सोमकीर्तिसूरि	शीतलनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १२२६

१००.	१५२७	आषाढ़ सुदि १३ रविवार	सोमकीर्तिसूरि के पट्टधर चारुचन्द्रसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १०९४
१०१.	१५२७	माघ सुदि ९ बुधवार	साधुकीर्तिसूरि, चारुचन्द्रसूरि	धर्मनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पाश्र्वनाथ जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्ति लेखांक १०५४
१०२.	१५२८	चैत्र वदि १० गुरुवार	ज्ञानदेवसूरि	शांतिनाथ की धातु की पंचतिर्थी प्रतिमा का लेख	गौड़ीपाश्र्वनाथ जिनालय, गौड़ीजी की खड़की, राधनपुर	मुनि विशालविजय पूर्वोक्ति लेखांक २५७
१०३.	१५२९	माघ वदि ६ रविवार	सोमकीर्तिसूरि	चन्द्रप्रभ की की प्रतिमा का लेख	पंचायती जैनमंदिर मिर्जापुर	नाहर, पूर्वोक्ति-भाग १, भाग १, लेखांक ४३२
१०४.	१५३१	फाल्गुन सुदि ८ शनिवार	सोमकीर्तिसूरि के पट्टधर वीरचन्द्रसूरि	सुमतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिना, उदयपुर	वही, भाग २ लेखांक, १०९६

१०५.	१५३४	वैशाख बदि १३ सोमवार	सोमकीर्तिसूरि के पट्टधर वारचैन्द्र (वीरचन्द्र) सूरि	,,	पार्श्वनाथ जिनालय, भद्रावती	मुनि कान्तिसागर जैन धातु प्रतिमालेख भाग १, लेखांक २२७
१०६.	१५३७	ज्येष्ट वदि ४ मंगलवार	सोमकीर्ति सूरि के पट्टधर चारुचन्द्रसूरि	धर्मनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	संभवनाथदेरासर झवेरीवाड़, अहमदाबाद	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ८४२
१०७.	१५३८	वैशाख वदि ५ बुधवार अमरदेवसूरि	रत्नदेवसूरि के पट्टधर अमरदेवसूरि	चन्द्रप्रभ की धातु की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ का बड़ा चैत्य थराद	लोटा पूर्वोक्त लेखांक २१३
१०८.	१५४०	मार्गशीर्ष सुदि ५	सोमकीर्तिसूरि के पट्टधर चारुचन्द्रसूरि	वासुपूज्य की धातु की प्रतिमा का लेख	विमलनाथ जिनालय, कोचरों का चौक, बीकानेर	नाहरा, पूर्वोक्त लेखांक १५८३
१०९.	१५४२	वैशाख सुदि ९	सोमकीर्तिसूरि	आदिनाथ की पाषाण की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिना०, हनुमानगढ़, बीकानेर	वही, लेखांक २५३६

११०.	१५४३	वैशाख वदि १० शुक्रवार	सोमदेवसूरि	पार्श्वनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ देरासर, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग १, लेखांक ९१९
१११.	१५४८	कार्तिक सुदि ११ गुरुवार	सोमदेवसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर पंजाबी धर्मशाला पालिताना	शत्रुञ्जय वैभव लेखांक २४३
११२.	१५४८	,,	,,	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा का लेख	बड़ा मंदिर, पालिताना	वही, लेखांक एवं नाहर, पूर्वोक्त भाग १ लेखांक ६७५
११३.	१५५८	माघ सुदि ५ बुधवार	गुणदेवसूरि के संतानीय रत्नदेवसूरि	,,	शांतिनाथ देरासर, ऊंझां	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग१ लेखांक २१३
११४.	१५५९	माघ सुदि १०	भुवनकीर्तिसूरि	श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिना०, वासा, सिरोही	अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह, लेखांक ५५३

११५.	१५६६	वैशाख सुदि ७	,,	अजितनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त लेखांक १३६८
११६.	१५७१	तिथिविहीन	वीरदेवसूरि के पट्टधर पासदेवसूरि	संभवनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	संभवनाथ देरासर, कड़ी	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १ लेखांक ७३७
११७.	१५९१	वैशाख वदि २ सोमवार	वीरचन्द सूरि	शीतलनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ देरासर, देवसानो पाडो, अहमदाबाद	वही, भाग १ लेखांक १०८२
११८.	१५९१	,,	,,	सुमतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिना०, शेखनो पाडो, अहमदाबाद	वही, भाग १ लेखांक १००२
११९.	१५९१	वैशाख वदि ६ शुक्रवार	विजयदेव सूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	कपडवज का मंदिर, शत्रुञ्जय	शत्रुञ्जय वैभव लेखांक २८५

अभिलेखीय साक्ष्यों की पूर्वोक्ति सूची से यद्यपि चैत्रगच्छीय अनेक मुनिजनों के नाम ज्ञात होते हैं, किन्तु उनमें से कुछ के पूर्वा पर सम्बन्ध ही स्थापित हो पाते हैं, जो इस प्रकार है :

?
:
जिनेश्वरसूरि
|
जिनदेवसूरि वि० सं० १३०३

?
:
यशोदेवसूरि
|
देवेन्द्रसूरि वि० सं० १३१२
|
धर्मदेवसूरि वि० सं० १३१२-१३५४

?
:
पद्मचन्द्र सूरि
|
शालिभद्रसूरि
|
रविचन्द्रसूरि — धर्मचन्द्रसूरि

?
:
अजितसिंह सूरि
|
कनकप्रभसूरि वि० सं० १३२७

क्रमशः

महाराजा श्रेणिक

श्रीमती राजकुमारी बेगानी

पूर्वानुवृत्ति

सुनते ही नन्दा रो पड़ी। आखिर वह दिन आ ही गया जिसके आने की आशंका बनी हुई थी। आठ वर्ष पूर्व की मधुर स्मृति ने आज अचानक तन-मन-प्राण सबको झकझोर दिया। अभय कुमार ने फिर कहा—माँ तुम रो क्यों रही हो, सब कुछ सच-सच मुझे बताओ?

नन्दा बोली तो सुन—'आज से आठ वर्ष पूर्व एक देवस्वरूप से परदेशी हमारे घर अतिथि बनकर आए। उनके साथ मेरा विवाह हुआ और जब तू मेरे गर्भ में था तभी ऊँटनी पर सवार कुछ सवार न जाने कहाँ से आये—कुछ गुप-चुप बातें की और तेरे पिताजी हम सब को यह कह कर चले गए कि उनके पिताजी रोग शय्या पर हैं। उन्होंने मुझे बुलवाया है। मैंने भी उनके साथ जाने का हठ किया, किन्तु, पुत्र, पूर्ण गर्भावस्था में यात्रा निषिद्ध होने के कारण मुझे साथ नहीं ले गए। दुखद तो यह है कि लाख पूछने पर भी उन्होंने मुझे अपने कुल-वंश एवं निवास आदि का ठिकाना नहीं बताया और उससे भी दुखद यह है कि इन आठ वर्षों में उन्होंने हमारी कुशलक्षेम भी नहीं जाननी चाही।'

अभय कुमार ने कहा—'माँ पिताजी जाते समय अपना कोई चिह्न तुम्हें दे गये हैं?'

अकस्मात् नन्दा को वह शिलाखण्ड याद हो आया। बोली—'और तो कुछ नहीं एक शिलाखण्ड अवश्य दे गए थे। कह रहे थे इस पर सब कुछ लिख दिया है। किन्तु उस पर जो कुछ भी लिखा हुआ है वह किसी के भी समझ में नहीं आ रहा है।'

अभय ने कहा—'माँ तुम मुझे वह शिलाखण्ड दिखाओ'। नन्दा ने पूर्णतया सुरक्षित रूप से रखे उस शिलाखण्ड को अभय के हाथों में जो लाकर दिया।

उसे पढ़ते ही अभय का मुख उसी प्रकार खिल उठा जैसे सूर्य को देखकर कमल—बोला "माँ मेरे पिताजी तो राजगृही के राजा हैं।' राजकीय प्रपंच में उन्हें भला हमारी सुधि कहाँ रही होगी।

नन्दा विस्फारित नेत्रों से अपने होनहार पुत्र को देखने लगी। बोली—वे अपने आचार विचार से क्षत्रिव वंश के तो लगते थे किन्तु राजवंश के होंगे ऐसी तो हमारी कल्पना ही नहीं थी।

"माँ इस शिलाखण्ड पर तो स्पष्ट ही लिखा है 'पाण्डुरकुट्टी' अर्थात् सफेद दीवारों वाले महल—और गोपाल अर्थात् पृथ्वीपाल। माँ वे तो श्वेतवर्ण के ऊँचे महलों में रहने वाले पृथ्वीपाल हैं और वे राजगृह के निवासी हैं। माँ अब हमें तुरन्त पिताजी के पास जाना चाहिये। इस ननिहाल में हम कब तक रहेंगे अभय ने कहा।

इसके बाद दौड़ता हुआ अभय अपने नानाजी के कक्ष में पहुँचा और बोला नानाजी मेरे पिताजी राजगृही के राजा हैं मैं यह शिलाखण्ड पढ़कर जान गया हूँ अब आप मुझे और माँ को शीघ्र ही राजगृह भेजने की व्यवस्था करें।

सुनकर बेचारा सेठ तो हतप्रभ सा रह गया बोला— बेटे मेरे तो एकमात्र तुम्हीं आधार हो। तुम्हारे चले जाने के पश्चात् मैं कैसे जीवित रह सकूँगा ? फिर यहाँ तुम्हें किस चीज का अभाव है। यह अपार रिद्धि-सिद्धि वैभव सभी तो तुम्हारी है।'

'नहीं नानाजी, ननिहाल आखिर ननिहाल ही है अब हम हमारे घर जाएँगे। फिर माँ के लिए भी तो सोचिए। आठ वर्ष व्यतीत हो गए उसे पिताजी से मिले और मैंने तो अपने पिताजी को देखा तक नहीं है अतः मोह पाश को शिथिल कर हमारी यात्रा की तैयारी करें।

बाल हठ बड़ा प्रबल होता है। बेचारे सेठ को उसके सम्मुख झुकना ही पड़ा आखिर एक दिन शुभ मुहुर्त में अभय अपनी माँ को लेकर राजगृही की ओर रवाना हो गया और अपनी बुद्धिमानी के बल पर शीघ्र ही राजगृह पहुँचा और नगर के बाहर अपना पड़ाव डाल दिया।

अब अभय राजगृही की शोभा का अवलोकन करता हुआ इधर-उधर घूमने लगा। नगर की ऊँची ऊँची भव्य अट्टालिकाएँ, पुष्पों से सुवासित उद्यान सरोवर व्यवसाय की हलचल से पूर्ण विभिन्न पण्य भरी विदिनाएँ, पुष्ट अश्वों अश्वों पर चढ़कर आने-जाने वाले बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सज्जित श्रेष्ठीगण आदि ने अभय को शीघ्र ही समझा दिया कि राज्य जितना ही समृद्धिशाली है उतना ही व्यवस्थित। सतर्क, चौकन्ने राजपुरुषों प्रहरियों को देखकर यह अन्दाज लगाना भी कठिन नहीं था कि राजकीय व्यवस्था समुचित है।

कुछ और आगे बढ़ने पर कुमार ने एक जगह एकत्रित हुए जनसमूह को देखकर कौतुहलवश उनसे पूछा 'क्या बात है' इतनी भीड़ क्यों है ? क्या कोई प्रसाद वितरित किया जा रहा है। 'प्रसाद ? कैसा प्रसाद ?' लगता है तू विदेशी है। 'अवश्य ही विदेशी' हूँ। तभी तो पूछ रहा हूँ। बात यह है कि करीब तीन-चार साल पूर्व राजा ने इस सूखे कुएँ में मुद्रिका गिरवा दी और आदेश दिया कि जो इस मुद्रिका को कुएँ की जगत पर बैठे-बैठे निकाल देगा उसे वे

महामात्य की पदवी देंगे। ऐसा उन्होंने व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा के लिये किया है। किन्तु दुखद तो यह है आज तक लाखों प्रयत्न करने पर भी कोई उसे निकालने में समर्थ नही हुआ' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया।

'अरे यह तो बहुत साधारण कार्य है? लो मैं अभी करके दिखाता हूँ। सुनते ही वह व्यक्ति हँस पड़ा और बोला—'अरे बालक यह कार्य आसान नहीं है?

किन्तु अभय नहीं माना वह आगे बढ़ा—कुएँ का पूर्णतयः अवलोकन किया—फिर अभय ने गीला गोबर मँगवाया और उसे अँगुठी के ऊपर डाल दिया। तदुपरान्त उस गोबर को सुखाने के लिए घास का जलता हुआ पूला उस पर फेंका—उससे गोबर सूख गया और वह अँगुठी भी उसमें चिपक गयी।

तत्पश्चात् पास ही के एक तालाब से नाली निकाल कर उसके द्वारा कुएँ को पानी से भरना शुरू किया: जैसे-जैसे पानी भरता गया वह सूखा हुआ अँगूठी चिपका उपला तैरकर ऊपर आ गया और कुमार ने तुरन्त उसे उठाया और अँगूठी निकाल ली। चारों तरफ एकत्रित भीड़ और राजपुरुष एक बालक की इस अद्भुत युक्ति को देखकर आश्चर्य चकित हो गए। तुरन्त राजा को खबर भेजी गयी।

राजा ने इस बालक को राज-सभा में बुलवाया। उस सुन्दर तेजस्वी सिंह से निर्भीक बालक को देखकर राजा ने कहा—हे मेधावी बालक तुम कहाँ से आ रहे हो? क्रमशः

सौजन्य से :

BOYD SMITHS PVT. LTD.

B-3/5, GILLANDAR HOUSE

8, Netaji Subhas Road,

Calcutta-700 001

Phone Office : 220-8105/2139
Resi. : 244-0629/0319

विनम्रता :

विनय किए विद्या दिए, विनय धम का अग ।
प्रीति विनय से ही बढ़े, करो विनय का संग ।।

विनय धर्म का मूल है और शिष्टाचारी व्यक्ति का प्रथम लक्षण है । यह गुणवानों के हृदय में रहता है । विनयी गुण से सम्पन्न व्यक्ति जहां भी जाता है उसे सम्पत्ति ही सम्पत्ति मिलती है । विपत्ति उसके पास नहीं आती । अतः अपने से ज्ञान, शील, संयमादि में बड़ों की विनय करने में कभी संकोच नहीं करना चाहिए । विनय तो जीवन की शोभा है ।

महाराजा विक्रमादित्य बड़े ही विनयशील थे । एकदिन जब वो प्रातःकाल उद्यान में परिभ्रमण करके राजमहलों की ओर लौट रहे थे तो मार्ग में उन्हें साधुजी म० मिल गए । देखते ही राजा विक्रमादित्य नतमस्तक हो गए । राजा का सन्यासी के चरणों में झुकना सैनिकों को अच्छा नहीं लगा । अतः कहने लगे स्वामिन् ! आप तो राजाओं के राजा-महाराजा हैं । आप क्यों किसी को नमन करते हो ? महाराज विक्रमादित्य कहने लगे—सुनो ! साधु सज्जनों के चरणों में सर झुका देने से ही इसकी शोभा है । सैनिक जब उनकी बात से सहमत नहीं हुए तो उन्होंने मृत व्यक्ति की खोपड़ी विक्रय करने के लिए सम्पूर्ण नगरी में घुमाई । किसी ने एक टके में भी उसे नहीं खरीदा और न ही किसी ने धड़ को खरीदा । अब सैनिक और सिपहसालार समझ गए कि अहंकार से विकास का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है और अहंकारी के शरीर तथा सिर का क्या मूल्य होता है ? सिर की कीमत वास्तविक दर की पहचान करके वहां झुक जाने में है ।

—उपेन्द्र मुनि 'शास्त्री'

साभार : महावीर मिशन जुलाई १९९६

जैन पत्र पत्रिकाएँ कहाँ / क्या

जन प्रकाश, जून १९९६

भक्तामर स्तोत्र,		
राजधानी में आचार्य	:	सम्पादकीय
हे भारत के भाग्य	:	अ० स० श्री देवेन्द्र मुनिजी महाराज
अमृत योगी	:	उपा० श्री केवल मुनिजी महाराज
दैवी वृति, यानि	:	महासती प्रभावतीजी महाराज
संयमी साधु स्थान	:	उपा० श्री मनोहर मुनिजी महाराज
नारी ही नारी री	:	श्रीमती उमराव देवी धींग
कुण्ठा हीन, प्रसन्न	:	श्री चाँदमल "चाँद"
प्रक्रिया नर से	:	श्री देवी चन्द भण्डारी
नमक से प्यारे		
आपके हाथ में		

अणुव्रत जून १९९६

शक्ति का नियोजन आत्मा के उन्नयन में कर
अपसंस्कृति से हिस्सेदारी क्यों
चुनाव हो गए, अब क्या
निराशा में क्या करें
वाणी और दिमाग को मुक्त सम्प्रेषित होने दें
शिक्षा का समाज 'नर्व सेंटर' होना चाहिए
रंगों का रहस्मय संसार
सामाजिक क्रांति आपको दस्तक दे रही है
जरा सोचिए
जब्बरमल भण्डारी—आदर्श जीवन की मिसाल
दूषित अन्न का प्रभाव, एक मकोड़े की कहानी
स्तम्भ—मेरा विश्वास, पारदर्शी व्यक्तित्व, झरोखा, परिक्रमा, रोशनी, बालवाटिका, आपके पत्र, अणुव्रत की गूँज।

WB/NC-330

Vol. XX No. 4 **TITTHAYARA** **August 1996**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२